बनास जन

आलोचना का परिदृश्य

बनास जन

साहित्य-संस्कृति का संचयन

आलोचना का परिदृश्य

परामर्श : प्रो. काशीनाथ सिंह, वाराणसी
डॉ. ममता कालिया, दिल्ली
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, जयपुर
प्रो. माधव हाड़ा, उदयपुर
श्री महादेव टोप्पो, राँची

सम्पादक : पल्लव

सहयोग : गणपत तेली, भँवरलाल मीणा

कला पक्ष : निकिता त्रिपाठी

सहयोग राशि : 50 रुपये (यह अंक)–डाक द्वारा मँगवाने पर–85 रुपये
100 रुपये (संस्थागत)–डाक द्वारा मँगवाने पर–125 रुपये
6000 रुपये–आजीवन (व्यक्तिगत)
10,000 रुपये–आजीवन (संस्थागत)

समस्त पत्र व्यवहार : पल्लव
393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
ह्वाट्सअप : +91–8130072004 (केवल लिखित संदेश हेतु)
ई-मेल : banaasjan@gmail.com
वेबसाइट : www.notnul.com

कृपया रचनाएँ भेजने के लिए सिर्फ ई-मेल का उपयोग करें। आग्रह है कि इस संबंध में पूछताछ न करें। 'बनास जन' में सभी रचनाओं का स्वागत है।

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं।
संपादन एवं सह संपादन पूर्णतः अवैतनिक।
समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली न्यायालय होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक पल्लव द्वारा 393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एण्ड डी, कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित और प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, झिलमिल इंडस्ट्रीयल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित।

BANAAS JAN
Peer Reviewed Journal
(A Collection of Literature)

ISSN 2231–6558

अनुक्रम

अपनी बात		4
परंपरा और इतिहास		
आलोचना की निगाह में भारतीय नवजागरण	संजय जायसवाल	6
उन्नीसवीं सदी के नवजागरण के अन्तर्विरोध एवं उसका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	राम विनय शर्मा	14
भारत के ऐतिहासिक अतीत व वर्तमान से संवाद	सौरभ सिंह	22
हिन्दी आलोचना जगत का अनिवार्य दस्तावेज	बीरेंद्र सिंह	26
परंपरा, इतिहास दृष्टि और उत्तरआधुनिक चिंतन	अजय चंद्रवंशी	30
अस्मिता		
समकालीन समय में नारीवादी विचार	स्मिता अग्रवाल	37
स्त्रीवादी आलोचना की नई जमीन	मधु सिंह	41
बहुजन साहित्य की प्रासंगिकता	शशांक कुमार	45
विभूति		
प्रसाद की काव्य सृष्टि की एक अन्तरंग यात्रा	जीवन सिंह	48
नागार्जुन-साहित्य का सम्यक् विश्लेषण	सुशील कुमार सुमन	56
रामविलास शर्मा की सांस्कृतिक बहुज्ञता	नीलोफर उस्मानी	60
कथा साहित्य		
उपन्यासों के देस में	अरुण होता	64
आलोचना की परिधि से एक हस्तक्षेप	अनुपम कुमार	69
समकालीन कहानी पर गंभीर विवेचना	सुलोचना दास	73
उनकी लेखनी से बहता है समय का झरना	ममता दीपक वेर्लेकर	77
कविता		
कोलाहल के विरुद्ध कविता के पक्ष में	गोपाल प्रधान	81
कविता की हार्दिक विवेचना	ललित श्रीमाली	85
कुछ और भी		
साहित्य के चितेरे : नंदकिशोर आचार्य	प्रज्ञा त्रिवेदी	88
भाषा का समाज और अध्ययन	प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	92
समाजवादी विचारों से प्रभावित आलोचना	भावना मासीवाल	97
बुद्धिजीवियों की जिम्मेदारी का सवाल	अंकित नरवाल	101

उनकी लेखनी से बहता है समय का झरना

रोहिणी अग्रवाल हिन्दी साहित्य के कई वर्षों से पुरुष वर्चस्व से लदे आलोचनात्मक परिदृष्य में एक विवेकशील हस्तक्षेप है। हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला(1992), एक नजर कृष्णा सोबती पर(2000), इतिवृत्त की संरचना और स्वरूप (2005), समकालीन कथा साहित्य : सरहदें और सरोकार(2007), स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प (2011), साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छवास (2014), हिन्दी कहानी : वक्त की शिनाख़्त और सृजन का राग (2015), हिन्दी उपन्यास का स्त्री पाठ (2015), साहित्य का स्त्री स्वर (2016), हिन्दी उपन्यास : समय से संवाद(2016), कथालोचना के प्रतिमान (2020), उपन्यास में सदी का अक्स(2023) उनकी व्यापक रचनाशीलता एवं आलोचनात्मक प्रतिभा के दस्तावेज हैं। अपनी अभ्यासपूर्ण निरंतरता, निष्पक्षता और निश्चित धरातल पर मजबूत वैचारिकता से प्राप्त स्पष्टवादिता के कारण वे हिन्दी स्त्री-आलोचना के लिए नए और गंभीर मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। 'हिन्दी कहानी का स्त्री समय' इसी क्रम को आगे बढ़ाती उनकी नवीनतम आलोचनात्मक कृति है।

इस कृति के माध्यम से लेखिका हमें सौ साल की हिन्दी स्त्री-कहानी की विकास यात्रा पर ले चलती हैं। यह यात्रा शिवरानी देवी से शुरू होकर प्रकृति कागरेती तक उन सभी महत्त्वपूर्ण कहानीकारों की कहानियों की दुनिया में प्रवेश का अनुभव देती है, जिन्होंने अपनी सर्जनात्मकता से हिन्दी कहानी को समय समय पर नई रंग छटाओं से उन्नत किया है। यह स्त्री-कहानी जगत् का मात्र भ्रमण नहीं। स्त्री- कहानीकारों की कहानियों के उन बीज स्थानों को निहारने और महसूस करने का जरिया है जो उनकी संपूर्ण रचनात्मक संवेदना का मर्म बनकर उभरता है। यहाँ लेखिका बिलकुल एक 'कुशल टूर गाईड' की तरह इस यात्रा के संचालन के साथ-साथ स्वयं रसास्वादन की तरंगों पर झूमती हैं जिसके कारण, यह कृति एक वैकल्पिक गल्प रचते हुए रचनात्मक लेखन का आनंद देती है। तब काशीनाथ जी का कहना कि ''आलोचना भी रचना है'' सार्थक होने लगता है।

यह कृति चार खंडों में विभाजित है। पहले खंड 'विरासत' में शुरुआती दौर की महत्त्वपूर्ण कहानीकारों की कहानियों पर विचार किया गया है जिसमें शिवरानी देवी, सुभद्राकुमारी चौहान, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा है। 'सदी के आर पार' दूसरा खंड है जिसमें, मृदला गर्ग, ममता कालिया, मंजुल भगत, सुधा अरोड़ा, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा समाहित है। तीसरे खंड--'हमारा समकाल' में अलका सारावगी, अल्पना मिश्र, किरण सिंह और प्रज्ञा की कहानियों का समावेश किया गया है। चौथा खंड--'और अंत में' में इक्कीसवीं सदी की दो दशक पुरानी स्त्री-कहानी के विशेष संदर्भ में किया गया लेखन है जिसमें अच्छी कहानी पर विचार करने के साथ ही समय में पैठ बनानेवाली चार कहानियों की चर्चा की गई है जिसमें विजयश्री तनवीर की कहानी 'सिस्टर लिसा की रान पर रात', किरण सिंह की 'शिलवाहा', प्रीति प्रकाश की 'राम को जन्मभूमि मिलनी चाहिए' और प्रकृति कागरेती की 'चमगादड़' कहानी का समावेश है।

इस पुस्तक में स्त्री कहानिकारों की कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियों अथवा कहानी संग्रहों के आधार पर उनकी कहानियों की चर्चा की गई है। लेखिका शुरुआत नवजागरण से करती हैं। भारतीय नवजागरण भारतीय स्त्री के लिए एक प्रगतिशील दौर माना जाता रहा है। रोहिणी अग्रवाल इस धारणा को कटघरे

ममता दीपक वेर्लेकर : शिक्षक और समीक्षक।
घर क्र. 220/1, वोलवाडो, पिळर्ण, बार्देस, गोवा-403112
मो. : 7499129281 ईमेल : mamata@unigoa.ac.in

में खड़ा कर देती हैं और कहती है कि, दरअसल यह सामान्य परिवर्तनों के साथ यथास्थितिवाद बनाए रखने का मात्र एक एजेंडा था जिसकी शिकार साहित्यिक जगत् में सक्रिय स्त्रियाँ भी हुईं। शिवरानी देवी ऐसी ही कहानीकारों में से एक है। शिवरानी देवी को हमेशा से प्रेमचंद की छाया में ही देखा और परखा गया। यहाँ तक कहा गया कि उनकी कहानियाँ प्रेमचंद ने लिखी हैं। रोहिणी अग्रवाल चिह्नित करती हैं कि दरअसल शिवरानी देवी अपनी कहानियों में प्रेमचंद का विलोम हैं। उनकी नायिकाएँ पुरुषों से शोषित हैं पर अपना रास्ता खुद तय करना भी जानती हैं। वे अपनी कहानियों में गत्यात्मक उर्जा, वैचारिक स्पष्टता, ईमानदारी, निर्भीकता और पारदर्शिता के साथ उपस्थित होती हैं। सुभदाकुमारी चौहान को 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' तक सीमित कर दिया गया और उनकी कहानियाँ नजरअंदाज की गईं जिसमें पुरुषप्रधान मानसिकता पर सवाल उठाए गए थे। लेखिका दिखाती हैं कि सुभद्राकुमारी चौहान अपनी कहानियों में स्त्री के मन की मानवीय उमंगों और इच्छाओं को उकेरती हैं और एक स्वतंत्र निर्णय संपन्न आत्मचेतस् स्त्री का रूप चित्रित करती है जिसकी वजह से लेखिका उन्हें कृष्णा सोबती की पूर्वजा मानती हैं। कृष्णा सोबती के कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' के माध्यम से लेखिका उनकी नायिकाओं की विकास यात्रा पर चर्चा करती हैं और साथ ही यह भी स्पष्ट करती हैं कि वे अपनी कहानियों के माध्यम से अपने आप को पाने के लिए किस तरह सत्य की खोज तथा मूल्यों की पहचान करती हैं। मन्नू भंडारी की दो कहानियों 'बंद दराजों का साथ' और 'ऊँचाई' को लेखिका अपररिपक्व और स्त्री की हीन ग्रंथियों का चित्रण मानती हैं। इसी तरह उषा प्रियंवदा की कहनियों को स्त्री की तरल आकांक्षाओं का प्रगीत कहते हुए उनकी प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' का एक अलग पाठ प्रस्तुत करती है जिसमें वे गजाधर बाबू की छवि पितृसत्तात्मक व्यवस्था से पोषित पिता के रूप में करती हैं।

मृदुला गर्ग के कहानी संग्रह 'मेरे देश की मिट्टी अहा!' के संदर्भ में विचार करते हुए उनकी कहानी में आए स्त्रीवाद के विकासक्रम के हर पड़ाव की विशेषता, विवाह संस्था पर उठाए गए सवाल, व्यंग्यात्मकता और किस्सागोई जैसी शैली को रेखांकित किया गया है। इसी तरह ममता कालिया की कहानी 'बोलने वाली औरत' में व्यंग्य के भीतर विद्रोह बुनने की कला की प्रशंसा की गई है। मंजुल भगत की कहानी 'ले सर्वसुहागन कर्वरा' के माध्यम से धार्मिक प्रपंचों पर सवाल उठाए गए हैं। ईकहरी सुनहरी बुनावट से सजी सुधा अरोड़ा की कहानी 'बुत जो बोलते हैं' में माता-पिता और संतान के रिश्तों और टकराहटों पर टिप्पणी की गई है। रमणिका गुप्ता की कहानियों को लेखिका आंतरिक संरचना के मद्देनजर कहानियों की अपेक्षा रेखाचित्र मानने की पक्षधर हैं क्योंकि उनकी कहानियों में यथार्थ चित्रण का अत्यधिक दबाव है। वे समझती हैं कि उनकी कहानियाँ साहित्यिक दायरे में भलेही सफल न हों समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी 'फैसला' जैसी कहानी में राजनीति में स्त्री की स्थिति पर विचार करती हैं। लेखिका कहती हैं कि उनकी कहानियों में 'स्टिरियोटाईप' पुरुषों का अतिरेकपूर्ण चित्रण है और इस वजह से वे अपने स्त्री और पुरुष पात्रों को समग्रता से नहीं देख पातीं हैं। अलका सारावगी की कहानी 'आक एगारसी' सभ्यता के भविष्य में मनुष्य की संवेदना, प्रकृति की स्थिति, आपसी संबंधों को लेकर महत्त्वपूर्ण सवाल सामने आते हैं। लेखिका के अनुसार उनके सरोकार बृहत्तर मनुष्य से जुड़कर आते हैं जो मनुष्य को जाति, धर्म, लिंग के परे उसकी अखंडता में देखते हैं। समाज का पैना निरीक्षण ल्पना मिश्रा की विशेषता है जिसमें लेखिका उनकी कहानी 'इस जहाँ में हम' को एक पेंटिंग की तरह विश्लेषित कर कहानी में चित्रित स्त्री और पुरुष के मन की गहराईयों में उतरने की कोशिश में लगती हैं। इसी तरह किरण सिंह का कहानी संग्रह 'यीशू की किलें' की आलोचना की गई है। उनकी कहानियों में राजनीतिक 'अंडरटोन' मिलता है और वे स्त्री की संघर्ष करने की शक्ति पर भरोसा करती हैं। इसी तरह प्रज्ञा की कहानी 'मन्नत टेलर्स' के जरिए कहानिकार उपभोक्तावादी संस्कृति के षड्यंत्रों का विरोध करती हैं।

लेखिका पुस्तक के अंतिम खंड में शशिप्रभा शास्त्री, कुसुम अंसल, निरूपमा सेवती, दीप्ति खंडेलवाल, कृष्णा अग्निहोत्री, मालती जोशी जैसी लेखिकाओं का उल्लेख करते हुए कहती हैं कि स्त्री अस्मिता को लैंगिक प्राणी से अधिक नहीं समझ पाईं हैं। इसी तरह वे जयश्री राय और गीताश्री की कहानियों के कलात्मक सौंदर्य को स्वीकार करती हैं पर मानती हैं कि उनकी कहानी में चित्रित दैहिकता का उत्सव जयश्री राय की कहानियों के प्रभाव को क्षीण करता है और गीताश्री की कहानियों को ऊँचा नहीं उठा पाता। अंत में वे इक्कीसवीं सदी की चार कहानियों पर बात करती हैं। पहली कहानी है, विजयश्री तनवीर की कहानी 'सिस्टर लिसा की रान पर रात' और किरण सिंह की लंबी कहानी या उपन्यासिका 'शिलवाहा' जिसमें स्त्री का शोषण करने वाले धार्मिक पाखंड का पर्दाफाश किया गया है, प्रीति प्रकाश की 'राम को जन्मभूमि मिलनी चाहिए' जिसमें राम सीता की कहानी के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों से जुड़े कई सवाल सामने आते हैं और प्रकृति कागरेती की 'चमगादड़' कहानी जिसमें सृजनात्मक शिल्प के द्वारा पितृसत्ता को कटघरे में खड़ा किया गया है। कहानियों की आलोचना करते हुए लेखिका स्त्री के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, मानसिक और दैहिक जीवन से संबंधित कई सवालों से सतत टकराती हैं।

'स्त्रीवाद' और 'समाजशास्त्र' रोहिणी अग्रवाल की आलोचना का वैचारिक आधार और अन्वेषणात्मक 'टूल' है। पुस्तक की शुरुआत में ही वे अपनी इसी सैद्धांतिक भूमि को स्पष्ट करती हैं। साहित्य की 'स्त्री-दृष्टि' की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए वे कहती है कि, ''यह साहित्यिक परिदृष्य में रचयिता एवं पाठक के रूप में पुरुष के समानांतर स्त्री की सक्रिय उपस्थिति का स्वीकार है।'' इस दृष्टि के माध्यम से एक स्त्री सामाजिक संरचना को एक नए ढंग से समझने की कोशिश करती है। वह अपने समय एवं समाज की विविध इकाईयों को और उसके अंतःसंबंधों को विश्लेषित करती है, अपने संघर्षों और आकांक्षाओं को रूपाकार देती है। 'स्त्री-दृष्टि' वर्चस्ववादी शक्तियों से संचालित उन सभी रूढ़िग्रस्त धारणाओं को ध्वस्त करने की चाह रखती है जो स्त्रियों के अंतर्मन की उपेक्षा कर अपनी सुविधा के अनुसार उसे मनमाने ढंग से परिभाषित करते हैं। 'स्त्री-दृष्टि' स्त्री की अस्मिता को कुंठित करनेवाली सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के ऐसे ही एकांगी प्रक्षेपणों का विरोध करती है।

साहित्य की यह दृष्टि किसी भी साहित्य के मूल्यांकन को अंतिम 'वर्डिक्ट' न मानकर साहित्य के पाठ और पुनःपाठ की माँग करती है। वह स्त्री-पुरुष की रूढ़िग्रस्त छवियों को प्रश्नांकित भी करती है और यह सब करते हुए आत्मान्वेषण में तन्मय होना चाहती है। यह दृष्टि किसी भी तरह की अतिवादिता को आश्रय नहीं देती इसलिए उस स्त्रीवाद की गलत धारणाएँ पालनेवाली वर्जनाहीन दैहिक उच्छृंखलता का विरोध करती है जो प्रसिद्धि पाने की होड़ में पुंसवादी दृष्टि की शिकार हो गई हैं। लेखिका यह मानती है और यह सही भी है कि रचनाकार व्यक्तिगत 'लोकेशन' से प्राप्त अंतर्दृष्टि को शाब्दिक रूप में प्रतिफलित करता है। वह अपने लिंग, धर्म, वर्ग, वर्ण आदि पृष्ठभूमि के साथ रचना में उपस्थित होता है इसलिए, गलत आग्रह पालकर कि स्त्री-दृष्टि दकियानुस और आत्मरतिग्रस्त होती है 'स्त्री-दृष्टि' को नकारना सही नहीं होगा। वे व्यंग्य करती हैं, ''तो क्या पुरुष-पाठक के लिए स्त्री लेखन का अर्थ पुरुष के खिलाफ आरोपों और शिकायतों की अनाप-शनाप शृंखला है? सोचती हूँ, क्रंदन स्त्री-लेखन का केंद्रीय स्वर क्यों है? क्यों नहीं पुरुष रचनाकारों की तरह स्त्री आब्जर्वेशन के सारे वस्तुपरक ढंग से दूर-दूर तक दिखने वाले 'बड़े मुद्दों पर ठसके के साथ कलम चलाती? बिना भीगे तैर कर समंदर पार कर जाने का हुनर कभी तो सीखना भी चाहिए उसे भी।' ''

यह किताब पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि कोई रचनाकार अपने साहित्यिक मित्र से प्रगाढ आत्मीयता और दार्शनिक तल्लीनता से संवाद कर रहा है। एक ऐसा संवाद जो उसकी गहन संवेदनशीलता के साथ-साथ उसकी बौद्धिक कांति का परिचायक होता है। एक ऐसा संवाद जिसमें में वे अपनी दृष्टि

पर भी सवाल उठाती हैं और अपने मन की गुत्थियाँ भी सुलझाती हैं। एक ऐसा संवाद जो एक विशेष पाठक वर्ग के लिए होते हुए भी सामान्य पाठक वर्ग के अंतस् को छूने की क्षमता रखता है। उनकी यही गुण उनके आलोचनात्मक लेखन के शिल्प को आकार देता है। एक अत्यंत रोचक प्रयोग और है जहाँ कहानी का पाठ करते-करते कहानी के पात्र और समय 'फ्रीज' हो जाते हैं और लेखिका उस कहानी के 'स्पेस' में विचरण करती हैं, कभी एकालाप करती हैं तो कभी पात्रों से बात करती हैं। यह प्रयोग आलोचना को एकरेखीय और 'मोनोटोनस' होने से बचाता है। अलग-अलग विषय, शिल्प, शैली और रचनात्मक 'ट्रीटमेंट' की पद्धतियों वाली ये कहानियाँ स्त्री-कहानी के विकास, स्त्री-दृष्टि के विकास, समाजिक व्यवस्था में स्त्री की बदलती स्थिति का 264 पन्नों में समेटा गया चलचित्र है। जो इस आग्रह को तोड़ता है कि स्त्री कहानियाँ केवल आत्मालाप है। हालांकि इसमें यदि कहानीकारों को संपूर्ण रचनाओं के आधार पर चर्चा की जाती तो इसका रूप अलग होता पर लेखिका का मकसद यह नहीं है। लेखिका की आलोचनात्मक दृष्टि का एक विशेष लोकतंत्र है जिसमें स्त्री-कहानीकारों की रचनाशीलता को लेकर एक विशेष दृष्टि मिलती है लेकिन यह भी लगता है कि इन कहानी की दुनिया के और भी पहलु हैं और असंख्य संभावनाएँ भी। शायद यही लेखिका चाहती हैं। कहानी से और खुद से सवाल पूछकर प्रबल उत्सुकता जगाना और जवाब की खोज करते हुए सामाजिक संरचना की समीक्षा करना। इस प्रक्रिया में वे पुंसवादी दृष्टि को बार-बार फटकारती हैं। कबीर, तुलसी, प्रेमचंद, उदय प्रकाश आदि लेखकों की पुंसवादी स्त्री-दृष्टि पर सवाल करती हैं। वे यह भी जानती हैं कि सदियों के वर्चस्व ने स्त्रियों की दृष्टि को भी प्रभावित किया है, वे उनके साहित्य में आई पुंसवादी दृष्टि पर सवाल करती हैं। स्त्री-दृष्टि के साथ ही उनके साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र का भी सूक्ष्म विश्लेषण करती हैं। साहित्यिक आलोचना के बहाने हमारे समय की भयावहता और नफरत की राजनीति की तरफ पाठक का ध्यान खींचती हैं। यहाँ वे एक और पूर्वाग्रह को तोड़ती हैं कि स्त्री-आलोचना केवल स्त्री-साहित्य का गौरवगान है।

यह एक ऐसा समय है जिसमें मनुष्य की संवेदना धीरे-धीरे यांत्रिक होती जा रही है। स्त्री-स्वाधीनता की भ्रामक टंकार गूँज रही है। सत्ता और वर्चस्व का पुरुषी अहंकार अपनी चरम पर है और अच्छे-अच्छों को पस्त कर रहा है। ऐसे समय में साहित्य और कलाएँही समय के सच को बयाँ कर मनुष्य के कमजोर होते मन को सहला सकती हैं। कहना गलत नहीं होगा कि साहित्य की सकारात्मक शक्तियों पर विश्वास करने वालों के लिए यह किताब पठनीय होगी और संतोषप्रद भी। इस दृष्टि से रोहिणी अग्रवाल का इस पुस्तक को लिखने के पीछे का 'अप्रोच' प्रशंसनीय और प्रेरक है। वे कहती हैं, "नफरत के सहारे नफरत को नहीं जीता जा सकता। प्रेम के सहारे नफरत रूपी शत्रु का सफाया संभव है। पितृसत्ता को हराने के लिए वर्चस्व की भाषा नहीं, वैचारिक उदारता, सम्मान और विश्वास को अपनी पूँजी बनाना जरूरी है।" हमारा समय इसी दृष्टि की बेहद माँग करता है।

समीक्षित कृति
कहानी का स्त्री समय
रोहिणी अग्रवाल
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।